शोध मंथन Vol. XII No.IV Oct.-Dec. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

उत्तराखण्ड में वर्ण आधारित व्यवस्थाः एक ऐतिहासिक अवलोकन

प्राप्तिः 12.10.2021
स्वीकृतः 28.12.2021

डॉ० संजय कुमार पन्त
एसोसिएट प्रोफेसर,इतिहास विभागाध्यक्ष
के०जी०के०महाविद्यालय
मुरादाबाद (उ०प्र०)
ईमेलः *13sanjaypant@gmail.com*

सारांश

उत्तराखण्ड में वर्ण आधारित व्यवस्था का ऐतिहासिक अवलोकन करने पर पांच महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। प्रथम, उत्तराखण्ड में आर्यो के प्रवेश के पश्चात् वर्ण आधारित व वर्ग आधारित व्यवस्था अस्तित्व में आई और आरम्भ में यहाँ का समाज रंगभेद पर आधारित था जिसे आर्य व आर्येतर कहा जा सकता है। द्वितीय, खश व क्षत्रियों को अलग श्रेणी में रखा जाना, कालान्तर में छकाता के धर्माधिकारी महादेव पंत द्वारा खशों का यज्ञोपवीत करवाना, नायकों व स्वर्णकारों का अपनी सामाजिक स्थिति के लिये संघर्ष करना कहीं न कहीं इतिहास के गर्त में छिपी ब्राह्मण–क्षत्रिय संघर्ष की उत्तराखण्ड में पड़ने वाले प्रभाव की स्पष्ट अभिव्यंजना कहा जा सकता है। तृतीय, जिस प्रकार प्रवासियों ने उत्तराखण्ड में अपना प्रभुत्व जमाकर वहाँ के मूल निवासियों (अन्त्यजों) का शोषण ही नहीं किया अपितु स्वयं को कालान्तर में वहाँ का मूल निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया, मानवीय मूल्यों के हनन की चरम पराकाष्ठा कहा जा सकता है, परन्तु इतिहास में समर्थ व शक्तिशाली वर्ग ने ही शासन किया है इसे कौन नकार सकता है और दलित व अन्त्यजों को आगे बढ़ाने के लिये ब्रिटिश शासन के प्रयास व आर्य समाज का योगदान प्रशंसनीय है। चतुर्थ, जनजातीय वर्ग में जौहारी भोटान्तिकों को छोड़कर अन्य को जिस प्रकार अब वर्ण व्यवस्था ने प्रभावित करना आरम्भ किया है यह आश्चर्यजनक है। पंचम, कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था का जो स्वरूप आरम्भ में था वह समय की आवश्यकता थी किन्तु कालान्तर में जिस प्रकार इसने विकृत, जन्मजात एवं मानवीय मूल्यों से परे अपनी पकड़ बनाई, वह इसका निशेधात्मक पहलू है।

प्रस्तावना

उत्तराखण्ड के इतिहास लेखन पर पाश्चात्य विद्वानों का नजरिया चाहे जो भी रहा हो किन्तु उनका कार्य इतिहास के पन्नों को खंगालने की दृष्टि से महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु श्लाघनीय भी है। परवर्ती इतिहासकारों ने जिनमें हरिकृष्ण रतूड़ी, राहुल सांकृत्यायन, पातीराम, पन्नालाल, एस०डी० जोशी, बी०डी० पाण्डे, डॉ० एस०पी० डबराल, प्रो० के०पी० नौटियाल, प्रो० शेखर पाठक, प्रो० सकलानी, प्रो० बी०एम० खंडूरी, प्रो० ए०के० मित्तल, प्रो० अजय रावत, प्रो० सी०एम० अग्रवाल एवं प्रो० शन्तन सिंह नेगी आदि महत्वपूर्ण हैं, इतिहास को वास्तविक अर्थ में खोजने का जो प्रयास किया, वह निःसन्देह उत्तराखण्ड के इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

क्षेत्रीय इतिहास के क्रम में उत्तराखण्ड में प्राप्त प्रस्तर युगीन साक्ष्यों से यह स्वीकार किया जा सकता है कि उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचल में मानव सभ्यता के शिखर पर शनैः शनैः आरूढ़ हुआ, परन्तु वह स्वतः को अपने तक सीमित न कर सका क्योंकि समयान्तराल के साथ–साथ आर्यों के भारत आगमन से पूर्व ताम्र एवं लौह संस्कृति के मध्य पर्वतीय क्षेत्रों पर विदेशी जातियों द्वारा पराजित जातियाँ सम्भवतः उत्तराखण्ड, कश्मीर, नेपाल और विन्ध्यपर्वत की विशाल अटवियों में प्रविष्ट हुई। इसका प्रधान कारण हिमाचल प्रदेश, नेपाल एवं उत्तराखण्ड का सदियों से सिन्धु के मैदानों से सम्पर्क रहा। इन आगन्तुक प्राचीन जातियों के सन्दर्भ में वर्तमान में अनेक विद्वान कार्यरत हैं। डॉ० डी०एन० मजूमदार इन्हें तीन वर्गो में विभाजित करते हैं।[1]

(अ) आदिम डोम नृवंश – इसका रूप रंग काला है और इसके अन्तर्गत कोली, कोलटा, बाजगिरि और ओढ़ आदि शिल्पकार जातियाँ आती हैं।

(ब) मंगोलाइन नृवंश – इसमें तिब्बती, मंगोल तथा इतर मंगोल कोल किरात हैं।

(स) खशनृवंश – इस वंश के प्रतिनिधि लम्बे, मोटे खश ब्राह्मण, खश राजपूत कोल और भट्ट हैं।

डॉ० गुहा ने अपने विश्लेषण के आधार पर भारत के निवासियों को ग्यारह नृशाखाओं में विभाजित किया है– निशाद, कोल, किरात, तिब्बती, मंगोल, आदिमरोम सागरीय, रोम सागरीय प्राच्य, दरदादि, खशादि, शकादि एवं वैदिक आर्य।[2] उपर्युक्त जातियों के पर्वतीय वन–प्रदेशों में प्रविष्ट होने तथा भूमि को रहने एवं कृषि योग्य बनाने के पश्चात् स्थायी निवास की आशंका की जा सकती है। वैदिक साहित्य में उल्लिखित सप्तसिन्धु के आधार पर कहा जा सकता है कि यह क्षेत्र आर्यो का क्रीड़ा क्षेत्र रहा है। वैदिक साहित्य का अध्ययन स्पष्ट करता है कि पंजाब में बसते समय आर्य जाति पाँच जनों में विभक्त थी। सप्तसिन्धु के मैदान में बसते समय आर्यो ने जब अन्य स्थानों में प्रसार प्रारम्भ किया तो उन्हें सर्वप्रथम आर्येतर जातियों से संघर्ष करना पड़ा और इस संघर्ष में पर्वतीय अंचल में निवास कर रही आर्येतर जातियाँ भी थीं। ऋग्वेद में इसका साक्ष्य मिलता है, ''हे बहुकर्मा इन्द। तुमने रथ और घोड़ों को बचाते हुए शम्बर के निन्यानवें गढ़ों को तोड़ा। हे कल्याणकारी अश्विद्वय। जिन साधनों से तुमने अतिथि प्रेमी दिवोदास की शम्बर के साथ युद्ध करके रक्षा की तथा त्रसदस्यु को संग्राम में बचाया उन साधनों सहित आओ।'' हे इन्द्र! तुमने पुरू और दिवोदास के लिए शत्रु के दुर्गो को तोड़ा और अपने तेज से अतिथिग्व को महान धन दिया और शम्बर को पर्वत से गिरा दिया ।''[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि सप्तसिन्धु के शक्तिशाली आर्य नरेशों को हिमालय की श्रेणियों में अधिकार से रोकने के लिए शम्बर ने पर्वतीय नरेशों का संघ बनाया। सम्भवतः शम्बर के निन्यानवें गढ़ों को तोड़ने का तात्पर्य उसके संघ को तोड़ने से है और शम्बर को पर्वत से गिराने का आशय आर्यो का पर्वतीय अंचल में विजय से है। इस विजय से आर्यो के लिए हिमालय के समृद्ध तराई क्षेत्रों एवं स्वास्थ्यप्रद उपत्यकाओं के द्वार खुल गये और हिमालय की अपार–खनिज सम्पत्ति आर्यो को प्राप्त हुई। आर्यो के प्रसार के साथ ही सभ्यता एवं संस्कृति के क्षेत्र में उत्तराखण्ड में उथल–पुथल का एक नया दौर प्रारम्भ हो गया जिसमें सामाजिक व्यवस्था भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। शोध पत्र का मूल उद्देश्य आर्यो की मूलभूत सामाजिक व्यवस्था को मूल इकाई–वर्ण व्यवस्था से जुड़े महत्वपूर्ण पहलुओं को उत्तराखण्ड के परिप्रेक्ष्य में खोजने का प्रयास मात्र है।

समाज को सुचारू एवं सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने के प्रयोजन से ही आर्यो ने श्रम विभाजन को आधार मानते हुए समाज को विभिन्न वर्गो में विभाजित करने का जो प्रयास किया वह तत्कालीन परिस्थितियों व उसके भीतर निहित उद्देश्यों की दृष्टि से श्लाघनीय ही कहा जायेगा चाहे कालान्तर में उस व्यवस्था में जन्मजात अनेक विसंगतियों ने जन्म क्यों न लिया हो, जो कि कालान्तर की व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण दोष था जिसने वर्ण व्यवस्था को जाति व्यवस्था से जोड़ने में कोई कसर न छोड़ी थी। ऋग्वैदिक ऋषि का यह कथन कि हमारी बुद्धियाँ अनेक प्रकार की हैं। दूसरे मनुष्यों के कर्म भी अनेक प्रकार के हैं। बढ़ई लकड़ी का कार्य करना चाहता है, वैद्य रोगी को चाहता है, वेद का विद्वान यज्ञ करने वाले यजमान का इच्छुक है[4], सामाजिक जीवन में व्यक्तिगत अभिरुचि को स्पष्ट करता है। इसकी पुष्टि ऋग्वेद में वर्णित इस उल्लेख से भी हो जाती है, ''मैं कारू (स्तोता, प्रणेता) हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं, और मेरी माता आटा पीसती हैं। हम सभी गायों के सदृश एक स्थल पर रहते हुए विभिन्न व्यवस्थाओं से जीविका चलाते हैं।''[5] इसी के आगे ऋषि को कहते हुए उल्लिखित किया गया है कि हे इन्द्र ! क्या तुम मुझे राजा बनाओगे ? या फिर ऋषि बनाओगे या अत्यधिक मात्रा में धन प्रदान करोगे ?[6] ऋग्वेद के दशम मण्डल में पुरूष सूक्त में चार वर्णो का उल्लेख मिलता है। जिसमें ब्राह्मण की उत्पत्ति मुख से, क्षत्रिय की उत्पत्ति भुजाओं से, वैश्य की उत्पत्ति जंघाओं से तथा शूद्र की उत्पत्ति पावों से बतलाई गई है।[7] वस्तुतः यह एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मानी जाती है।[8] वस्तुतः ऋग्वैदिक समाज वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म न होकर कर्म पर आधारित था,[9] जिसका स्पष्ट प्रमाण ऋषि अन्धतमस के पुत्र का जन्म शूद्रा के गर्भ से होने के बाबजूद भी अपनी तपस्या व ज्ञान से उसका ब्राह्मणत्व को प्राप्त करना था।[10] सभ्यता व संस्कृति के विकास ने एक नए वर्ण जिसे पंचमवर्ण कहा जा सकता है और जिसका विवरण यजुर्वेद में भी मिलता है, जहाँ ऋषि को रथकार, कुलाल, बढ़ई आदि को नमस्कार करते हुए प्रदर्षित किया गया है।[11]

ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लोगों में से कई की स्थिति वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत परिभाषित चारों वर्णो से भिन्न थी जो स्तरीकरण में वैश्य से निम्नतर व शूद्र से उच्चतर थी। यथा सूत, रथकार वप्ता कुलाल आदि।[12]

जहाँ तक उत्तराखण्ड का प्रश्न है ऐतिहासिक सन्दर्भ स्रोत इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि उत्तराखण्ड में वर्ण आधारित एवं वर्ग आधारित सामाजिक व्यवस्था थी और आरम्भ में यहाँ का समाज रंग भेद पर आधारित था, जिसे आर्य और आर्येत्तर कहा जा सकता है। महाभारत में कुणिन्द नरेश को द्विजश्रेष्ठ, द्विजवर्मन के तालेश्वर के वृषताप–ताम्रपत्र में गोब्राह्मण हितैशी शब्द का प्रयोग, सिरोली के जलाशय अभिलेख में नरवर्मन के लिए क्षत्रिय शब्द का प्रयोग तथा कत्यूरी अभिलेखों में वणिक और श्रेष्ठिन् शब्द का प्रयोग इस तथ्य की पुष्टि करता है कि इस समय तक यहाँ पर वर्ण आधारित सामाजिक व्यवस्था अपना अस्तित्व बना चुकी थी।[13] मध्यकाल में भारत के महाराष्ट्र, राजस्थान आदि क्षेत्रों से जो ब्राह्मण और क्षत्रिय उत्तराखण्ड में प्रविष्ट हुए उससे पूर्व यहाँ का समाज सवर्ण (बीठ) और असवर्ण (वैरसुआ) इन दो भागों में विभक्त था। कत्यूरी शासन में बीठ में आने वाले ब्राह्मणों व क्षत्रियों के वैवाहिक सम्बन्ध अपने ही वर्ग में होते थे किन्तु यदि किसी ब्राह्मण द्वारा डोला और सरौल के रूप में किसी क्षत्रिय कन्या से विवाह कर लिया जाता था तो उसका सामाजिक बहिष्कार नहीं होता था, किन्तु विवाहिता क्षत्रिया के साथ अवैध सम्बन्ध दोष माना जाता था जिसके लिये उसे शुद्धीकरण करना पड़ता था।[14] कत्यूरी अभिलेखों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और चांडाल यह वर्ग विभाजन मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि खश और क्षत्रियों को अलग–अलग श्रेणियों में रखने का कारण खशों को पतित क्षत्रिय कोटि में रखा जाना था। कालान्तर में खशों को चंदशासकों ने अद्विज श्रेणी में रखा। वैश्य वर्ण का समावेश उत्तराखण्ड में बहुत बाद में आया। इसके अतिरिक्त यहाँ पर दशनामी सम्प्रदाय के अनुयायियों का भी अस्तित्व मिलता है। इसमें आने वाले गिरि, पुरी, तीर्थ, भारती, सरस्वती और वन यह छः वर्ग प्राप्त होते हैं, जिन्हें गुसाई कहा जाता है।[15] क्षत्रिय और वैश्य वर्ग के लोग इनमें वैवाहिक सम्बन्ध नहीं रखते थे। अतः धीरे–धीरे इन्होंने पुरोहितों के माध्यम से वैदिक कर्मकाण्डों, अनुष्ठानों का पालन करना आरम्भ कर दिया। जहाँ तक नायकों का सम्बन्ध है इनसे रोटी–बेटी का सम्बन्ध ब्राह्मण, क्षत्रिय और खश नहीं करते थे लेकिन अब इनको क्षत्रिय वर्ग में माना जाने लगा है। एक और वर्ग स्वर्णकारों का था। अब इन्हें चौधरी और वर्मा कहा जाता है और इनकी गणना वैश्य वर्ग में की जाती है।[16] जहाँ तक दूसरे प्रश्न उत्तराखण्ड में वर्णो के उत्कर्ष और अपकर्ष का है, इसमें दो उदाहरण प्राप्त होते हैं। प्रथम रयूनी के वुगत्याल, जो कि पहले ब्राह्मण थे अब क्षत्रिय वर्ग में आते हैं।[17] राजी लोगों के वर्ग का अन्तर्जातीय वैवाहिक सम्बन्ध होने से क्षत्रिय वर्ग में शामिल किया गया है।[18] खाता के धर्माधिकारी महादेव पन्त ने यहाँ के खश वर्गो का यज्ञोपवीत करवाकर इन्हें द्विजाति में प्रवेश दिया ।[19] वर्ण परिवर्तन की स्थिति नेपाल में भी मिलती है, जहाँ राजा भीमशमशेर ने कुछ मंगोल जाति के लोगों को यज्ञोपवीत का अधिकार देकर क्षत्रिय वर्ग में शामिल किया।[20] उत्तराखण्ड की वर्णव्यवस्था में तीसरा प्रश्न असवर्णो की स्थिति से सम्बन्धित है। ओकले का मानना है कि अन्त्यज (भैरवसवा या डोम) उत्तराखण्ड के मूल निवासी थे, जो कि खश और आर्यो के आने से पहले थे, वे इसमें आते हैं,[21] उत्तराखण्ड के भूभाग में डोमों को वेदों में कथित दास–दासियों का वंशज माना गया है। इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों द्वारा मूलतः कोल, निषाद को ही यहाँ का वंशज माना गया है।[22] मजूमदार की धारणा है कि शिल्पकार जाति का नृवंशीय जाति के साथ कोई ऐसा सम्बन्ध स्थापित ही नहीं होता है। जिसका सीधा सम्बन्ध उत्तराखण्ड के ब्राह्मणों व क्षत्रियों में पाया जाता है।[23] यह अत्यन्त ही चौंकाने वाला तथ्य है कि जो अप्रवासी पुरोहित यहाँ पर आये, उन्होंने यहाँ की पूर्वस्थित व्यवस्था को खण्डित किया और नई सामाजिक व्यवस्था को लागू किया। सिद्ध, गन्दर्भ, किन्नर आदि हिमालय की जातियाँ यहाँ की सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग होते हुए भी अलग–थलग सी पड़ गयी। यह तथ्य भी चौंकाने वाला है कि जो लोग मंदिरों की मूर्तियाँ बनाते, मंदिरों का निर्माण करते उन्हें ही प्राण प्रतिष्ठा करने के पश्चात मंदिर के अन्दर जाने की अनुमति नहीं थी।[24] इतना ही नहीं सवर्ण जाति से भिन्न इनके आवासीय क्षेत्र जंगल और जलाशय अलग–अलग होते थे। इन्हें यदि घर की मरम्मत करने के लिए बुलाया जाता तो उसके बाद गोमूत्र व गंगाजल छिड़ककर उसे पवित्र किया जाता था। इन्हें न तो मंत्र सुनने का और न ही तर्पण या पिण्डदान करने का अधिकार था परन्तु इतना अवश्य था कि ये श्राद्ध के नाम पर अपने भान्जों व जमाई को बुलाकर भोजन करा सकते थे।[25] हां इतना अवश्य है कि लोकसंस्कृति को जीवित रखने वाला यहाँ का ढोलीदास वर्ग लोक देवताओं का आह्वान करने के कारण सम्मान का पात्र अवश्य था। लगभग 800 वर्षो तक ठुलजात सवर्णो का शोषण सहने वाला निम्न वर्ग ब्रिटिश शासकों द्वारा बनाये गये नियमों के बाद शिक्षा, धार्मिक अनुष्ठान और कृषि व्यवस्था के क्षेत्र में खुली साँस लेने का साहस कर सका। आर्य समाज के प्रचारकों ने इसमें विशेष भूमिका निभायी, जोकि दलित वर्ग को अनवरत रूप से मुक्ति पथ का रास्ता दिखा रही है।

चौथा प्रश्न जनजातीय समाज के वर्ण व्यवस्था से पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर है। इस परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि उत्तराखण्ड का जनजातीय समाज (जौहारी भोटान्तिकों को छोड़कर) वर्णव्यवस्था से अछूता था। इनमें जाति व्यवस्था अवश्य थी किन्तु इसका स्वरूप वर्ण व्यवस्था पर आधारित नहीं था। परन्तु अब यह कहना ही समीचीन प्रतीत होता है कि वर्ण व्यवस्था ने अब इन पर भी अपना सांस्कृतिक प्रभाव डालना शुरू कर दिया है।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से पांच महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। प्रथम, उत्तराखण्ड में आर्यो के प्रवेश के पश्चात् वर्ण आधारित व वर्ग आधारित व्यवस्था अस्तित्व में आई और आरम्भ में यहाँ का समाज रंगभेद पर आधारित था जिसे आर्य व आर्येतर कहा जा सकता है। द्वितीय, खश व क्षत्रियों को अलग श्रेणी में रखा जाना, कालान्तर में छकाता के धर्माधिकारी महादेव पंत द्वारा खशों का यज्ञोपवीत करवाना, नायकों व स्वर्णकारों का अपनी सामाजिक स्थिति के लिये संघर्ष करना कहीं न कहीं इतिहास के गर्त में छिपी ब्राह्मण–क्षत्रिय संघर्ष की उत्तराखण्ड में पड़ने वाले प्रभाव की स्पष्ट अभिव्यंजना कहा जा सकता है। तृतीय, जिस प्रकार प्रवासियों ने उत्तराखण्ड में अपना प्रभुत्व जमाकर वहाँ के मूल निवासियों (अन्त्यजों) का शोषण ही नहीं किया अपितु स्वयं को कालान्तर में वहाँ का मूल निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया, मानवीय मूल्यों के हनन की चरम पराकाष्ठा कहा जा सकता है, परन्तु इतिहास में समर्थ व शक्तिशाली वर्ग ने ही शासन किया है इसे कौन नकार सकता है और दलित व अन्त्यजों को आगे बढ़ाने के लिये ब्रिटिश शासन के प्रयास व आर्य समाज का योगदान प्रशंसनीय है। चतुर्थ, जनजातीय वर्ग में जौहारी भोटान्तिकों को छोड़कर अन्य को जिस प्रकार अब वर्ण व्यवस्था ने प्रभावित करना आरम्भ किया है यह आश्चर्यजनक है। पंचम, कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था का जो स्वरूप आरम्भ में था वह समय की आवश्यकता थी किन्तु कालान्तर में जिस प्रकार इसने विकृत, जन्मजात एवं मानवीय मूल्यों से परे अपनी पकड़ बनाई, वह इसका निशेधात्मक पहलू है।

संदर्भ सूची

1. मजूमदार, डी०एन०, रेसेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1961, पृ० 39.
2. गुहा, रामचन्द्र, रेशियल ऐलिमेन्ट्स इन दि पापुलेशन, 1935, पृ० 114.
3. ''त्वंरथमेतशंत्व्ये धने त्वं पुरो नवति दम्भयो नव।।ऋग्वेद प्रथम मण्डल सूक्त 54/6, पृ० 8–9याभिर्महामतिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम्। याभिः पूर्भिधे त्रसदस्यु भवतं तार्मिरूशु अतिभिरश्विनानगतम्।। ऋग्वेद प्रथम मण्डल सूक्त 112/14, पृ० 183'' भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशषे नृतो वज्रेण दाशषे नृतो। अतिथिग्वाय शम्बरं गिरिरूग्रो अवाभरत्। महो धनानि दयमान ओजसा विश्वधनानयोजसाः।। ऋग्वेद प्रथम खण्ड सूक्त, 137/7, पृ० 230 सम्पादक शर्मा, श्री राम आचार्य, गायत्री प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा 1960.
4. नानानं वा उ नो धियो वि ब्रतानि जनानाम्। त्वारिष्टं रूतं भिषग् ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छति।। ऋग्वेद 1112:1 सम्पादक शर्मा, श्रीराम, गायत्री प्रकाशन गायत्री तपोभूमि, मथुरा 1960.
5. कारू रहं तातो भिषगुपलप्रक्षिणीनना। नानाधियो वसूयवो अनु गा इव तस्थिम ऋग्वेद 112, 3 सम्पादक शर्मा, श्रीराम, गायत्री प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा 1960.

6. पूर्वोक्त
7. ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहू राजन्यः कष्तः। उरूहः तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्म्यांशूद्रोऽजायतः। ऋग्वेद, पुरूष सूक्त, मण्डल दशम्, पूर्वोक्त, सन्दर्भ 4
8. बाशम, ए०एल०, दि वंडर्स दैट वाज इण्डिया, लन्दन 1967, पृ० 28
9. पूर्वोक्त, पृ० 30–31
10. ऋग्वेद 1, 116–26, पूर्वोक्त सन्दर्भ 4
11. नमस्तक्षकेभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमः। नमः कलालेभ्यः कमरिभ्यश्चः वो नमः।। यजुर्वेद, 1627 श्री मद्यानन्द सरस्वती स्वाजिना संस्थापितया श्रीमती परोपकारिणी सभया प्रकाशिता वि0स0 1919
12. शर्मा, डी०डी०, उत्तराखण्ड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास 3(1) प्रथम संस्करण, उत्तरायण प्रकाशन, हल्द्वानी, 2003, पृ० 7
13. पूर्वोक्त, पृ० 22
14. पूर्वोक्त, पृ० 23
15. उत्तराखण्ड के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण के दौरान विभिन्न लोगों से लिये गये साक्षात्कार के आधार पर ।
16. पूर्वोक्त ।
17. एटकिन्सन, ई०टी०, दि हिमालयन डिस्ट्रिक्ट ऑफ नार्थ वैस्टर्न प्राविन्स ऑफ इण्डिया, गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, 1984, पृ० 429
18. सनवाल, आर०डी०, सोशियल स्ट्रेटिफिकेशन इन रूरल, कुमाऊँ, आक्सफोर्ड लन्दन, 1976, पृ० 5
19. पूर्वोक्त
20. शर्मा, जनक लाल, हाम्रो समाज (नेपाली) काठमांडू वि० 2049
21. औकले, ई०एस०, दि होली हिमालया, रिप्रिन्ट नई दिल्ली, 1896, पृ० 42
22. कुक, विलयम, ट्राइब्स एण्ड कास्टेस, रिप्रिन्ट नई दिल्ली, 1896, पृ० 45
23. मजूमदार, डी०एन०, रेसेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया, बम्बई, 1958, पृ० 39
24. शर्मा, डी०डी०, पूर्वोक्त, सन्दर्भ 12, पृ० 33
25. उत्तराखण्ड में विभिन्न स्थानों पर भ्रमण के दौरान विभिन्न लोगों के लिये गये साक्षात्कार के आधार पर ।